ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 147-151

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

बुन्देलखण्ड का कलातीर्थ– देवगढ़

पंकज शर्मा
एसो. प्रो.– इतिहास विभाग, नेहरू पी.जी. कॉलेज, ललितपुर (उ0प्र0), भारत

सारांश : ***पृथ्वी पर मानव के अवतरण के प्रथम चरण से ही कला का भी आरम्भ हुआ। अरण्यवासी मानव ने प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य का अमूर्त रूप देख उसे अपने पाषाण आयुधों से मूर्तरूप देने का प्रयास किया। प्राकृतिक वनाच्छादित क्षेत्रों एवं सरिताओं के किनारे जब उसने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को विकसित किया, तब उसकी कलात्मक प्रतिभा उसके बौद्धिक विकास के साथ ही उसके सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन में भी घुल–मिल गई, जिसके प्रमाण प्राचीनकाल से अद्यतन भारत में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। अतः इतिहास एवं संस्कृति के दस्तावेज और विरासत के प्रमुख महत्वपूर्ण प्रमाण ये कलाकृतियाँ मन्दिरों, मूर्तियों, भित्तिचित्रों, अभिलेखों, मुद्राओं एवं मुहरों आदि के रूप मे सम्पूर्ण भारत मे विपुलता में विद्यमान है। ऐसी ही पुरातात्विक विपुल कलासम्पदा के धनी बुन्देलखण्ड के प्रमुख कला तीर्थ 'देवगढ़' में प्राचीन संस्कृति एवं कला के हमें प्रत्यक्ष दर्शन होतें हैं, जो अपने कलात्मक सौंदर्य एवं सांस्कृतिक गौरव के लिये विख्यात रहा है।***

कुंजीभूत शब्द– अवतरण, आरम्भ, नैसर्गिक सौन्दर्य, आयुधों, मूर्तरूप, प्राकृतिक, वनाच्छादित, सरिताओं ।

उत्तर प्रदेश के दूरस्थ एवं प्राकृतिक, खनिज एवं पुरातात्विक सम्पदा से आच्छादित बुन्देलखण्ड के हृदय क्षेत्र जनपद ललितपुर से लगभग 33 कि0मी0 दक्षिण–पश्चिम में अवस्थित 'देवगढ़' भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति एवं कला का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है।

मूलतः देवगढ़ बेतवा नदी के मुहाने सुरभ्य, चित्ताकर्षण एवं प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण निचाई में स्थित एक छोटा सा गाँव है, जहाँ भारतीय कला का प्रवाह किसी न किसी रूप में प्रागैतिहासिक काल से निरन्तर 16–17वीं सदी ई0 तक मिलता है जिसमें वैदिक–पौराणिक और जैन दोनों ही परम्पराओं के कलावशेष मौजूद हैं। देवगढ़ की ऊँची पहाड़ी पर स्थित प्राचीन दुर्ग के अहाते में जहाँ 41 जैन मंदिर, 19 मानस्तम्भ एवं अनगिनत मूर्तियाँ जैनकला का अद्वितीय संगम है, वहीं विशाल प्राचीर के दक्षिण–पश्चिम में ऐतिहासिक वराह मंदिर अवस्थित है। इसके अलावा ऊँची पहाड़ी को काटकर बनाई गई ऐतिहासिक नाहरघाटी, राजघाटी एवं सिद्धघाटी अथवा गुफा चित्ताकर्षक हैं। पहाड़ी के दक्षिण में ठीक लगभग 300 फुट नीचे विंध्य पर्वतमाला को काटती हुयी तीव्र मोड़ लेती इठलाती बेतवा नदी सुन्दर प्राकृतिक एवं रमणीक दृश्य उत्पन्न करती है।

वास्तव में प्रागैतिहासिक काल से ही देवगढ़ में मानवीय गतिविधियों के स्पष्ट प्रमाण पत्थर के उपकरणों एवं गुफाचित्रों के रूप में मिलते है।[1] प्रारम्भ में यह चेदि जनपद के दशार्ण नामक भाग के अर्न्तगत आता था। मौर्यो के पश्चात शुंग–सातवाहन एवं नागों के काल में इस स्थान का व्यापारिक महत्व था। विदिशा से मथुरा जानेवाले राजमार्ग पर यह एक महत्वपूर्ण विश्रामस्थल के रूप में विख्यात रहा।[2] विदिशा से ही एक अन्य मार्ग देवगढ़ होते हुये काशी को जाता था। गुप्तकाल से राजनीतिक एवं कलात्मक दृष्टिकोण से देवगढ़ के महत्व के प्रमाणिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[3] विश्वप्रसिद्व देवगढ़ का दशावतार मंदिर, और वराह मंदिर इस स्थल के तत्कालीन महत्व के आज भी साक्षी हैं। गुप्तों के पश्चात आठवीं सदी ई0 तक देवगढ़ संभवतः स्थानीय राजवंश के अधीन रहा। नवीं सदी में यहाँ गुर्जर–प्रतिहार शासकों का प्रभाव था। यहाँ से प्राप्त गुर्जर–प्रतिहार नरेश भोजदेव के विक्रम सम्वत 919 (862ई0) से पता चलता है कि पहले इस स्थल का नाम 'लुअच्छगिरि' था, जिस पर भोज के महासामन्त विश्णुदेव पचिन्द का शासन था।[4] देवगढ़ पर चन्देलों का शासन दीर्घकाल तक रहा। यहाँ से प्राप्त सम्वत 1154 (1097ई0) के एक उत्कीर्ण लेखानुसार चंन्देलवंशीय राजा कीर्तिवर्मा के मन्त्री वत्सराज ने इस स्थान पर एक गिरिदुर्ग का निर्माण कराया एवं उसका नाम अपने स्वामी के नाम पर 'कीर्तिगिरि' रखा।[5] यहाँ प्राप्त 11–12वीं सदी ई. के अनेकों मूर्तियों, मानस्तम्भों एवं मन्दिरों से भी चन्देल शैली के संकेत प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात के इतिहासक्रम की बहुत स्पष्ट जानकारी हमें प्राप्त नहीं होती है। संभवतः 12–13वीं सदी ई0 में इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया, जिसके सम्बन्ध में अनेकों किवदंतियां प्रचलित हैं।[6] किन्तु संभवतः यहाँ पर उपस्थित अनेक समाधियों, चरणपादुकाओं, अभिलेखों, साधुओं के

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

गुफास्थलों, घाटियों , मन्दिरों एवं असंख्य देवप्रतिमाओं की उपलब्धता के कारण ही यह क्षेत्र देवगढ़ नाम से विख्यात हुआ होगा।

देवगढ़ का स्वर्णिम अतीत– विंध्याचल की उपत्यकाओं में स्थित नैसर्गिक छटा से भरपूर देवगढ़ अज्ञात कलाकारों की कर्मस्थली रहा है, जिन्होने अपने कौशल द्वारा अनूठी कलाकृतियों को निर्जीव पत्थरों पर उकेरकर उन्हें जीवंतता प्रदान कर उन्हें अमर बना दिया। यहाँ स्थित पुरासम्पदा, मन्दिर, मूर्तियाँ, बेतवानदी, घाटियाँ एवं वन्यजीव विहार आदि सभी मिलकर देवगढ़ को न केवल तीर्थस्थल बल्कि एक सुरभ्य पर्यटन स्थल भी बनाते हैं। वैष्णव ,जैनएवं बौद्धकला का अद्वितीय संगम स्थल देवगढ़ निःसंदेह उत्तर भारत का एक विशिष्ट कलातीर्थ है, यह ऐक ऐसा अनूठा तीर्थस्थल है जहाँ की निर्माण प्रकिया में सीधे तौर पर किसी भी शासक के संरक्षण का प्रमाण नहीं मिलता एवं सामूहिक सामाजिक चेतना एवं कियाशीलता तथा प्रबल एवं स्पष्ट जनसंरक्षण का अनुपम उदाहरण है। इस कलातीर्थ के प्रमुख चित्ताकर्षण निम्नवत हैं–

1. विष्णु का दशावतार मन्दिर– देवगढ़ का नाम दशावतार मन्दिर के कारण विश्व प्रसिद्व हैं। विष्णु को समर्पित नागरशैली का यह पंचायतन आकार का मन्दिर गुप्तकालीन स्थापत्यकला के विकास के अन्तिम चरण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 6ठी सदी ई0 के इस मन्दिर को 'गुप्ता मन्दिर' और 'सागरमठ '(नदी अथवा तालाब के किनारे का मन्दिर) भी कहा जाता है। मध्यमाकार, वर्गाकार, और पश्चिमोन्मुखी इस मन्दिर का निर्माण एक चौड़े चबूतरे पर हुआ है, जिसके चारों कोनों पर एक–एक छोटे मन्दिर भी थे। इस प्रकार यह पाँच मन्दिरों का समूह था, जिसे पंचायतन प्रकार का मन्दिर कहा जाता है। पश्चिमोन्मुखी, वर्गाकार गर्भगृह में सम्प्रति कोई भी प्रतिमा प्रतिस्थापित नहीं है। गर्भगृह की आकृति के आधार पर प्रारम्भ के कुछ विद्वानों द्वारा इसे षिव मंदिर की संज्ञा दी गई थी, किन्तु इसके ललाट बिम्ब (प्राचीन मन्दिरों मे गर्भगृह में जो मुख्य मूर्ति होती थी द्वार अपर उसी से सम्बन्धित छोटी मूर्ति द्वार चौखट के बीचोंबीच लगाई जाती थी) पर कुण्डलीबद्व शैषासीन सर्पफनों के छत्र से शोभित विष्णु की मूर्ति है। अतएव यह एक वैष्णव मन्दिर है।[7] मन्दिर की द्वारशाखायें पत्रवल्लरियों आदि से अलंकृत हैं जो जीवन और ऊर्जा के सतत प्रवाह का प्रतीक हैं। शैषासीन विष्णु के समीप नमस्कार की मुद्रा में चतुर्भुज नरसिंह, नीचे दाहिने पैर को पकड़े हुये लक्ष्मी तथा बायीं जंघा की ओर बौनी आकृति में उनका वाहन गरूड़ उत्कीर्ण हैं। विष्णु के दोनों ओर गन्धर्व पुश्पमाला लिये हुये हैं। द्वार के दायीं ओर सूर्य एवं बायीं ओर चन्द्र की आकृति, एवं इसीप्रकार दायीं ओर मकरवाहिनी गंगा तथा बायीं ओर कूर्मवाहिनी यमुना रूपायित हैं, जो जल और जीवन की अभिन्नता के साथ ही आत्मशुद्वि एवं भक्ति का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त यक्ष दम्पत्तियों का दाम्पत्य प्रेम एवं भारवाहक कीचकों की स्वाभाविक आकृतियाँ कला–समृद्वि की परिचायक हैं।

इस मन्दिर की विश्वविख्यात विशेषता इसके बाहरी दीवारों के फलक पर अंकित भगवान विष्णु से सम्बन्धित विभिन्न घटनाक्रम की सुरूचिपूर्ण पृष्ठभूमि है। जिसमें दक्षिण की ओर उत्कीर्ण 'अनन्तशायी आसन में विराजमान विष्णु' की सबसे सुन्दर तथा उत्कृष्ट कलाकृति है, जो स्थापत्यकला की दृष्टि से सबसे अनमोल है। इस मनमोहिनी कलाकृति में भगवान विष्णु को शेषशायी अवस्था में लेटे दिखाया गया है उनका बायां हाथ सर को टिकाये हुये एवं दायां हाथ दाहिनी जंघा पर है साथ ही लक्ष्मी उनके दायें पैर के अंगूठे को दबा रहीं हैं। उनके पीछे यक्षिका एवं उनका वाहन गरूड़ हैं। आकाश में क्रमशः दायें से बायें मयूरारूढ़ कार्तिकेय, गजारूढ़ इन्द्र, कमलासीन ब्रह्मा, वृषभारूढ़ शिव–पार्वती एवं मारूतः अपने–अपने वाहनों पर तेजी से सवार होकर इस लीला को देखने को आतुर प्रतीत हो रहे हैं। सम्पूर्ण दृश्यांकन में विष्णु की मुद्रा से शान्ति और विश्राम का सहज राजस भाव प्रकट हो रहा है। उनके लेटने की अवस्था को कलाकार ने बड़ी ही बारीकी से उकेरा है। उनके शरीर के वजन से शेषनाग रूपी बिस्तर कहीं दबा एव कहीं उठा हुआ है, शरीर पर विद्यमान झीने वस्त्र, शारीरिक भाव–भंगिमायें, एवं हाथों के नाखून आदि अत्यन्त ही जीवंतभाव प्रकट करते हैं। इस दृश्य के नीचे विद्यमान आकर्षक पंक्ति में पाँच पुरूष एवं एक स्त्री मूर्ति है, जिसकी व्याख्या को लेकर मतभिन्नता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये पंच पाडंव एवं द्रौपदी की आकृति है। जबकि कुछ इसे मधु–कैटभ वध का दृश्यांकन मानते हैं जो संभवतः अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि मधु–कैटभ के अलावा चार अन्य आकृतियों को चतुर्भुज विष्णु के आयुधों के रूप में दर्शाया गया है, जो उनके केश सज्जा में क्रमशः पद्म, शंख, चक्र पुरूष एवं गदादेवी के रूप में स्पष्ट है। मन्दिर की पूर्व की ओर रथिका बिम्ब पर 'नर–नारायण' दृश्य उत्कीर्ण है। विष्णु ने नारायण के साथ ही नर का भी अवतार लिया था। गीतानुसार कृष्ण और अर्जुन क्रमशः नारायण एवं नर के रूप हैं। इस फलक में बद्रिकाश्रम का मनोहारी दृश्य अंकित है, जिसमें शिलाखण्डों के नीचे वन्यपशुओं सिंह, और मृग को साथ–साथ निश्चिंतभाव से दर्शाकर शिल्पी ने तपोभूमि के सात्विक वातावरण उपस्थित किया है। बद्री वृक्ष की छाया में दो अलग–अलग शिलाखण्डों

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

पर नारायण और नर अन्तर्मुखी स्वरूप में विराजमान हैं। आकृतियों के पारस्परिक झुकाव से कथा का भाव जीवन्त हो रहा है, जिसमें नारायण वितर्क मुद्रा में बुद्व के धर्म चक्रप्रवर्तन मुद्रा की भाँति ज्ञान का प्रकाष नर रूपी अवतार को दे रहे हैं। वहीं नर अवतार की मुद्रा तनिक सी झुकी हुई ज्ञान को ग्रहण करने की पात्रता एवं जिज्ञासा दोनों को अभिव्यक्त कर रही है। इस प्रकार बिना शाब्दिक व्याख्या के ही दाता एवं गृहीता का भाव उपस्थित किया गया है। सम्पूर्ण दृष्य के चारों ओर अपूर्व शान्ति का भाव है।

मन्दिर के मुख्यद्वार के बायीं ओर अर्थात उत्तर की ओर दीवार पर उत्कीर्ण कलाकृति 'गजेन्द्र मोक्ष' विषय को दृश्यांकित करती है। वस्तुतः शिल्पी ने इस दृश्य को संयोजन की दृष्टि से तीन समानान्तर फलकों में विभक्त किया है। ऊपर दिव्य लोक है जहाँ से गरूड़ासीन विष्णु तेजी से अपने भक्त गज की पुकार पर उसकी रक्षा हेतु तीव्रता से उतरते प्रतीत हो रहे हैं, वहीं उनके देवदूतगण हाथों में उनका विशिष्ट मुकुट थामे चले आ रहे हैं, मानो भक्त की पुकार पर भगवान अपना मुकुट छोड़ आये हों। नीचे ग्राह के चंगुल से व्याकुल गजराज की सूंड़ में उत्कीर्ण आड़ी रेखायें उसकी व्याकुलता को विष्णु से तादात्म्य कर रहीं हैं। विष्णु का उभरा हुआ वक्षस्थल उनके राजस भाव एवं सिर का पार्श्व की ओर झुका होना उनके तीव्रगामी होने का परिचायक है। इसके अलावा सप्तपर्णधारी मानव देह धारी नागदम्पत्ति हाथ जोड़े क्षमामुद्रा में दर्शाये गये हैं, जहाँ चक्र नागदेवरूपी ग्राह के वक्षस्थल को आघात कर चुका है। साथ ही गज और ग्राह के मध्य हुये संघर्ष के चलते तालाब में जलमंथन के फलस्वरूप पुष्प–लताओं को सजीवता से हिलते हुये दर्शाया है। वस्तुतः इस फलक में कथा के तीन स्तरों– प्रथम, गज के आर्तनाद पर उसकी रक्षार्थ आकाश से विष्णु का त्वरा में आगमन।, द्वितीय, प्रयोग की मुद्रा में चक्र का प्रदर्शन एवं तृतीय, चक्र के प्रहार से आहत नागदम्पत्ति का क्षमायाचन।

उत्तर भारत में पाषाणनिर्मित पिरामिडनुमा शिखर का सबसे प्राचीन एवं सर्वोत्कृष्ट नमूना देवगढ़ के इसी दशावतार मन्दिर में है, सम्प्रति नष्टप्रायः है किन्तु पास में पड़े हुये विशाल अमलक विशालकाय शिखर की गाथा को स्वयं कहते हैं। वस्तुतः मन्दिर के चारों ओर चार–चार स्तम्भों की सहायता से अर्द्वमण्डपाकार ढका हुआ प्रदक्षिणापथ भी था, जिसके चारों द्वार सुन्दर मूर्तियों से अलंकृत थे।[8] गर्भगृह की द्वारस्तम्भ पर शिखर की प्रतिकृति अब भी अवशिष्ट है। इसके अतिरिक्त श्रीगुप्त उल्लखित स्तम्भ एवं पत्थर की पानी की विशाल वाबड़ी भी विद्यमान हैं, संभवतः इसी से निकले पत्थरों से उपराक्त मंदिर का निर्माण किया गया हो। लाल बलुये पत्थर से निर्मित यहाँ की अनेकों मूर्तियाँ एवं ध्वसांवशेष पास ही स्थित संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

2 वराह मन्दिर– देवगढ़ पर्वत पर स्थित दुर्ग के दक्षिणी–पश्चिमी कोने पर एक विषाल वराह मन्दिर के अवशेष प्रमाण विद्यमान हैं। लगभग 7वीं सदी ई0 का सतह से 7 फुट ऊँचा यह मन्दिर दशावतार मन्दिर का ही परवर्ती रूपान्तरण है।[9] पूर्वाभिमुखी इस मन्दिर की मुख्यमूर्ति भगवान विष्णु के वराहावतार की है, जो वराहमन्दिर के नाम को सार्थक करती है। इसका प्रवेशद्वार अलंकृत एवं अत्यन्त छोटा है, जो प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार इष्टदेव के समक्ष दर्शनार्थी के नतमस्तक होने का प्रतीक है। दशावतार मन्दिर की भाँति इस मन्दिर की बाह्यभित्तियों पर भी गजेन्द्रमोक्ष, नर–नारायण तपस्या, शेषशायी तथा अपने आयुधों से युक्त चतुर्भुज विष्णु, की मूर्तियों का अंकन था, किन्तु दशावतार की भाँति इन मूर्तियों की जीवंतता में ह्रास स्पश्ट है। सम्प्रति मन्दिर पूर्णतः खण्डित अवस्था में हैं, यहाँ केवल एक स्तम्भ, द्वारशाखा तथा पीठिका पर लेटे हुये नाग दम्पत्ति की आकृतियाँ ही सुरक्षित हैं। दुर्भाग्य से कुछ वर्षपूर्व नृवराह की यह मूल प्रतिमा चोरी हो गई थी, जो बरामदगी के पश्चात देवगढ़ स्थित संग्रहालय में अन्य मूर्तियों एवं ध्वंसावशेषों के साथ सुरक्षित है।

3. जैन मन्दिर एवं मूर्तियाँ– वस्तुतः देवगढ़ गुप्तकाल एवं उसके परवर्ती गुर्जर–प्रतिहार तथा चन्देलकालीन कला शिल्प सौन्दर्य का अद्भुत संगम स्थल रहा है, जो जैन मूर्तिकला और स्थापत्य की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। यहाँ कला विकास 4थी सदी ई0 से लेकर 16–17वीं सदीई0 तक किसी न किसी रूप में निरन्तर बना रहा। पर्वत पर स्थित कीर्तिदुर्ग प्राचीर के पूर्व की ओर एक परकोटे के भीतर छोटे–बड़े कुल मिलाकर 41 जैन मन्दिर, 19 मानस्तम्भ, लगभग 300 से ऊपर शिलालेख, एवं पंच परमेष्ठी, आचार्य, आर्यिकाये, उपाध्याय, भगवान भरत, बाहुबली, आदिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर आदि चौबीस तीर्थंकरों तथा चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सरस्वती, लक्ष्मी आदि यक्षियों की लगभग हजार से ऊपर देव प्रतिमायें, जैन दर्शन के भूत, वर्तमान एवं भविष्य के चौबीस तीर्थंकरों, भगवान की माता के 16 स्वप्न, छप्पन कुमारिकाओं आदि के पाशाणखण्डों पर अंकित हैं। कला और वैशिष्टय की दृष्टि से यहाँ के मन्दिरों का निर्माण ऐतिहासिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। इनमें आध्यात्मिक एवं दार्शनिक के साथ ही सामाजिक सन्देश भी दृष्टिगोचर होता है। प्रारम्भ में ऐतिहासिक शोधकर्ताओं (दयाराम साहनी आदि) द्वारा सर्वेक्षण के आधार पर जो मन्दिरों को क्रमांक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

दिया गया था, वह 1991 ई0 में देवगढ़ में हुये 'गजरथ महोत्सव' के उपरान्त नवीन रूप से क्रमबद्व कर दिये गये हैं।10 परकोटे में अवस्थित अधिकांश मन्दिर 9–11वीं सदी के हैं जिनमें कुछ अपनी विशिष्ट कलात्मकता द्वारा चित्ताकर्षित करते हैं जिनमें क्रमांक सं03 का सहस्त्रकूट चैत्यालय, जिसमें 1008जिन मूर्तियाँ एक ही पत्थर को काटकर उत्कीर्ण की गईं है। इसमें एक शिलालेख भी है, जिस पर मांडू के शासक हौशंगशाह गौरी का उल्लेख है।, मन्दिर क्रमांक 5, जिसमें 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी की कायोत्सर्ग मुद्रा की विभिन्न 23 मूर्तियाँ।, मन्दिर क्रमांक 18, की लक्ष्मी एवं सरस्वती की आकर्षक मूर्तियाँ, (यहाँ की लक्ष्मीजी की मूर्ति विगत 2 वर्ष पूर्व चोरी हो गई थी, जो बराबदगी के पश्चात पुनः प्रतिस्थापित की गई, किन्तु इसका पिछला चक्र खण्डित हो चुका है), मन्दिर क्रमांक 23 की जिनमाता त्रिशला की शैया पर लेटी हुई मूर्ति एवं मन्दिर क्रमांक 17, 21, 22, 24 आदि उल्लेखनीय हैं।

जैन मन्दिरों में भगवान शान्तिनाथ को समर्पित मन्दिर क्रमांक 30 निःसन्देह अपनी विशालता, स्थापत्य शिल्प एवं प्रतिमालक्षण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। लगभग 12फुट ऊँची कायोत्सर्गी मुद्रा में भगवान शान्तिनाथ की संभवतः 8–9वीं सदी की महान प्रतिमा अपने समय और कलात्मक गुणों के कारण सर्वाधिक गौरवशाली हैं। इस मन्दिर के स्थापत्य एवं मूर्तियों में प्रतिहार–चंदेल शैली के साथ–साथ दर्शन होते हैं।[11] मंन्दिर के प्रवेशद्वार की शाखाओं पर गंगा–यमुना, नवग्रह, चन्द्रमा, क्रीड़रत मत्स्य युगल, लक्ष्मी–सरस्वती, तथा माता के सोलह स्वप्नों का अंकन दृष्टव्य है। इस मंन्दिर के द्वारमंडप के आधार स्तम्भों पर कलाकृतियों के दुर्लभ नमून इसके कला सौष्ठव को संवारते हैं। एक आधार स्तम्भ पर सम्वत 919 का एक लेख उत्कीर्ण है, जिस पर कन्नौज के गूर्जर–प्रतिहार राजा भोजदेव का नाम उत्कीर्ण है, तथा इस स्थान का नाम 'लुअच्छगिरि' बताया गया है। नागर शैली के इस पंचायतन मन्दिर का भव्य अलंकृत शिखर प्रतिहारकालीन कला और संस्कृति के वैभव का स्वयं बखान करता है।

4. घाटियाँ–पर्वतमाला के दक्षिण में इठलाती, तीव्र बलखाती बेत्रवती (बेतवा) नदी के किनारे पर्वत की चट्टानों को काटकर प्राकृतिक एवं पुरातत्व स्थल घाटियों का निर्माण किया गया है, जहाँ बेतवा नदी तक जाने के लिये प्राकृतिक एवं सदियों पूर्व सीढ़ियाँ, गुफायें, देवकुलिकायें, शैलचित्र, शैलोत्कीर्ण मूर्तियाँ तथा शिलालेखों का ऐतिहासिक महत्वपूर्ण अंकन है, जिनमें आध्यात्मिकता एवं जीवंतता को बखूबी देखा जा सकता है।

दुर्ग के दक्षिण–पूर्व में बेतवा के किनारे स्थित 'नाहर घाटी' में कई महत्वपूर्ण शैलोत्कीर्ण मूतियाँ एवं अभिलेख हैं। इसकी दीवार पर 10X2 फुट आकार के फलक में 6–7वी सदी ई0 की सप्तमातृका आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।[12] प्रारम्भ में शिव, तत्पश्चात अक्षमाल धारिणी चतुर्मुखी ब्राह्मी, सिंह पर आरूढ़ पार्वती (गोदमें गणेश), गरूड़ासीन वैष्णवी, मानव पर आरूढ़ कौमारी, गजवाहिनी इन्द्राणी तथा चामुण्डा की आकृतियाँ उकेरी गईं हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रथिका पर विष्णु, सूर्य, महिषासुरमर्दिनी, एवं शिव की मूर्तियां दर्शनीय हैं, जो गुप्तकाल की जीवंतता को दर्शातीं हैं। सप्तमातृका फलक के ऊपर गुप्तकालीन 7 पंक्तियों का एक संस्कृत लेख भी है।

इसीप्रकार दुर्ग के दक्षिण–पश्चिम में स्थित 'राजघाटी' में भी प्रागैतिहासिक चित्र, अभिलेख एवं मूर्तियाँ चट्टानों पर उत्कीर्ण हैं। यहाँ पर्वत को काटकर बनाई गई एक महत्वपूर्ण गुफा है, जो 5,10लम्बी एवं 4'11'' चौड़ी है। इसी गुफा के पार्श्व में संवत 1154 (1097ई0) का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेख है, जिसे चंदेलवंशीय शासक कीर्तिवर्मन के मन्त्री वत्सराज ने उत्कीर्ण कराया था एव जिसके आधार पर इस स्थान का नाम कीर्तिदुर्ग रखा गया।[13] इसकी रथिकाओं पर भी एक मुखलिंग सहित तीन शिवलिंग, चतुर्भुज विष्णु, सूर्य, लक्ष्मी, गंगा–यमुना एवं सप्तमातृकायें अंकित हैं।

इसके अतिरिक्त राजघाटी के पार्श्व में दक्षिणी किनारे पर पर्वत को काटकर बनाई गई 'सिद्व की गुफा' है, जो साधकों की साधना स्थली प्रतीत होती है। इस गुफा में कई अभिलेख हैं, जिनमें सबसे प्राचीन संवत 609(552ई) का गुप्तकालीन अभिलेख है जिसमें सूर्यवंशी स्वामी भट्ट का का उल्लेख है।[14] इस गुफा में तीन द्वार हैं एवं दीवारों पर प्रागैतिहासिक शिलाचित्र के अंश प्रतीत होते हैं। गुफा की बांयीं ओर बाहरी भित्ति पर महिषमर्दिनी की एक भावपूर्ण प्रतिमा उत्कीर्ण है।

अन्य दर्शनीय स्थल– देवगढ़ एक ऐसा महत्वपूर्ण पुरास्थल है, जहाँ प्रकृति ने अपना नैसर्गिक सौन्दर्य उड़ेलने के साथ ही अज्ञात शिल्पकारों ने भी यहाँ उपलब्ध लाल बलुआ, एवं काले और भूरे बलुआ पत्थर को अपने कौशल से मोम बनाकर अनेक ऐतिहासिक रामायण, महाभारत, पौराणिक एवं जैन कलाकृतियों को बहुतायत में निर्मित किया। उपरोक्त स्थलों के अतिरिक्त देवगढ़ में दुर्ग की प्राचीर में स्थित 'कुन्ज द्वार एवं 'हाथी द्वार', एक पत्थर की बावड़ी, देवगढ़ ग्राम में शिव मिन्दिर में स्थित 6–7वीं सदी ई0 की एक मनोहारी चतुर्भुज शिवलिंग, हनुमान की क्रमशः वानर एवं मानव मुखी मूर्तियाँ, मध्यकालीन सामाजिक बुराई 'सती प्रथा' की यश गाथा गाते लगभग 20 'सती स्तम्भ'

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

(जिन्हें सती का चौरा कहा जाता है), जिन पर सूर्य एवं चन्द्र के मध्य हाथ का पंजा एवं नागरी लिपि में लेख भी उत्कीर्ण है, दशावतार मन्दिर परिसर स्थित पुरातात्विक संग्रहालय, जिसमें रामायण तथा महाभारतकालीन प्रसंगों से सम्बन्धित अहिल्या उद्धार, सूपर्णखा काण्ड, बालि–सुग्रीव युद्ध, रावण शिव–अर्चना, अगस्त आश्रम में राम, हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी लाना, नन्द–यशोदा, कृष्ण–बलराम लीला, एवं पंच पांडवों की दुर्लभ प्रतिमाओं के साथ ही हाल ही चोरी होने के बाद बरामद ऐतिहासिक प्रसिद्व बराह प्रतिमा सुरक्षित है। इसके अलावा दिगम्बर जैन धर्मशाला स्थित जैन मन्दिर एवं मानस्तम्भ, धर्मशाला परिसर स्थित साहू जैन संग्रहालय, जहाँ 10–13,14वीं सदी ई0 के मध्य की अनेकों दुर्लभ जिन एवं यक्ष–यक्षियों की मूर्तियाँ और शिलालेख आदि संग्रहित हैं, यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थल हैं। इसके अतिरिक्त विंध्य पर्वतमाला में जैन मन्दिर समूह के चारों ओर लगभग 1242 हेक्टेअर वनाच्छादित महावीर वन्य जन्तु विहार भी है, जिसमें सागौन, तेन्दू, करार, घौ, तथा बाँस के सघन वनों में भेड़िया, चीतल, लकड़बग्घा खरगोश तथा तेन्दुआ आदि के साथ ही बेतवा की गहरी धारा में घड़ियाल, मगर एवं कछुओं की विभिन्न प्रजातियाँ पाई जातीं हैं।

वस्तुतः देवगढ़ की कला, कला के लिये है, और कला जीवन के लिये जो जीवन के भावों को उजागर करती है। इस दृष्टि से भारतीय पौराणिक कला और जैन कला का अद्वितीय कला तीर्थ रहे, देवगढ़ को जितना देखा जाये और जितनी बार देखा जाये उतना ही मन को आनन्द और शांति की अनुभूति होती है। देवगढ़ का कलाकार जहाँ देवशास्त्र और मूर्ति विज्ञान के रूढ़ नियमों से परिचित था, वहीं प्रकृति के रमणीक रूपशशि का भी रसिक था। उसकी इस अभिनन्दनीय विशेषता का परिचय हमें उसके द्वारा कला प्रदर्शन के लिये चुने गये स्थान 'देवगढ़' को देखकर मिलता है। वास्तव में ऐसे अनुपम क्षेत्र में प्राकृतिक सुषमा के मध्य सिद्वहस्त कलाकारों के कला प्रदर्शन के अंतिम लक्ष्य' सत्यमं, षिवमं, सुन्दरमं' की साक्षात अनुभूति हो जाती है।–

"वे कौन थे? पत्थर जिन्होंने मोम कर दिया,..... वे कौन थे?, जो शिल्प का घट कर गये रीता, ...वे कौन थे? जो दे गये आँखों को सुभीता। छैनी की कलम और पसीने की स्याही से, वो कौन थे?, जो पत्थरों पर लिख गये गीता।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इण्डियन आर्केलॉजी, ए रिव्यू, 1959–60ई0, पृ0–46
2. वत्स, माधोस्वरूप, "द गुप्ता टेम्पल एट देवगढ़", ए0एस0आई0, खण्ड70, दिल्ली, 1952, पृ0–1
3. कनिंघम, ए0, "ए0एस0आई0 रिपोर्ट, खण्ड–10, वाराणसी, 1966 पृ0–102
4. तिवारी, मारूतिनन्दन एवं सिन्हा, एस0एस0, "जैनकला तीर्थ",देवगढ़जैन कमेटी, 2002, पृ0–5
5. जैन, भागचन्द'भागेन्दु', "देवगढ़ की जैन कला", भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2000, पृ0–36
6. वही, पृ0–29–31
7. राय, आनन्दकृष्ण, "आलेख, दशावतार मन्दिर–प्रमुख मूर्तियाँ", उत्तर प्रदेश (पुंरातत्व विशेषांक), खण्ड 9, अंक12, मई 1981, पृ0–10–13
8. श्रीवास्तव, एम0पी0, "प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, और दर्शन" ऐशिया बुक कम्पनी, पृ0–193
9. स्पूनर, डी0बी0, " ए0एस0आई0, एनुअल रिपोर्ट", कलकत्ता, 1917–18, भाग–1, पृ0–7–8
10. तिवारी, मारूतिनन्दन, "उपरोक्त", पृ0–125
11. वही, पृ0–133
12. जैन, भागचन्द, भागेन्दु, "उपरोक्त", पृ0–84
13. वही, पृ0–85
14. तिवारी, मारूतिनन्दन, "उपरोक्त" पृ0–11

*****